घोड़े

ओमा शर्मा

घोड़े

https://www.hindiadda.com/ghode/

शुरुआत :

हवा में इलेक्ट्रिक गोली दगने की सूखी ठाँय के साथ सारे घोड़े स्टार्टिंग गेट के पल्लों की पाबंदी से एकदम निकलकर चादर-सी चमकती हरी ट्रैक पर उड़न छू हो लिए। तीन-चार सौ मीटर की दूरी पर जाकर सारे घोड़े दूर से किसी फटैले बदहवास पुलिंदे की तरह चलायमान लग रहे थे। चार-पाँच घोड़े लगभग समान्तर दूरी पर पुलिंदे की कमान सँभाले हुए, ज्यादातर बीच में और दो-तीन पुछल्ले से बने पीछे-पीछे। उनके ऊपर चढ़ी जीन-काठियों पर पैवस्त सभी जॉकी चुस्ती से लगाम ताने, दोनों बाजू रकाबों की टेक के सहारे नब्बे डिग्री के कोण पर अधर होकर अपने-अपने घोड़ों की अयालों तक गहन एकाग्रता से यूँ दम मारकर झुके पड़े थे मानो दाँव पर लगी जिंदगी की मोहलत के लिए अपने-अपने केसरियों के कानों में कोई जरूरी मंत्र फूँकते जा रहे हों। पलक झपकते ही घोड़ों की भागती टोली हमारे सामने पसरे अंडाकार मैदान के सुदूर स्टेशन वाले छोर पर जा लगी जहाँ सब कुछ गड्ड-मड्ड-सा दिख रहा था। हमारी तरफ भागता हुआ उनका काफिला दूसरे घुमाव से निकलकर जब आधा किलोमीटर वाले सीधे फासले में पहुँचा तो आँखों देखा हाल सुनानेवाले कमेंटेटर की आवाज ने, हिंग्लिश में, जोश के साथ रफ्तार पकड़ ली'...सदर्न एंपायर ने लीड बना रखी है मगर 'टीजर', 'ऑस्कर' और 'शुबर्ट' एक लेंथ के भीतर उसे चेलैंज दे रहे हैं। तीसरी लेन में 'हैक्टर' बहुत अच्छा पिक कर रहा है जबकि 'हार्ड रॉक' आज कुछ बोल्ट कर रहा है।'

कमेंटेटर की जुबान मोर्चे के आगे दम मारते चार-पाँच घोड़ों पर सधी है - मानो वह किसी संगीत प्रस्तुति के पटाक्षेप से ठीक पहले जुगलबंदी करते तबलची की उँगलियों को अपनी तरह से 'चेक' करने लगी हों '...'सदर्न एंपायर' और 'हैक्टर' के बीच मुकाबले की टक्कर हो रही है। देखना है कि 'सदर्न एंपायर' अपना खिताब बचा पाता है या नहीं...'

इसी दरम्यान हवा से बात करते घोड़ों का समूह जब दर्शक दीर्घा के सामने से फिसलता हुआ आगे बढ़ने लगा तो लोग अपनी-अपनी जगहों पर थोड़ा उचककर, उत्साह और एकाग्रता से, साँस रोककर उस नजारे को देखने में खो गए जिसकी मियाद मुश्किल से आधा मिनट रही होगी। ...'सदर्न एंपायर' और 'हैक्टर' के बीच ब्लैंकेट फिनिश होने जा रही है... फोटो फिनिश में देखना पड़ेगा किसने वायर पहले क्रास किया है...' पचासों टापों की दमदार खुरदराहट के बीच से उठते वृंदगान के पंचम को अपने मोहक सुर में ढालता कमेंटेटर मुकाबले की इस कदर (करीब) समाप्ति पर आवेग और उल्लास से धड़ाधड़ बड़बड़ाए जा रहा है।

मैं अभी सामने मोबाइल पोस्ट से फर्लांग भर के दायरे में रेसिंग ट्रैक पर इधर-उधर छितरे दम लेते घोड़ों और उनके घुड़सवारों की भटकन में ही अटका हुआ था कि मानस ने ठेलते हुए कहा, 'चलो, 'गैलप्स' में बीयर लगाते हैं।'

मेरी जैसे तंद्रा टूटी हो।

'हाँ-हाँ, मगर जीता कौन?'

'अरे वही जिसे जीतना था।'

मानस का मिजाज रूखे और नुनखुरे होने से जूझ रहा था। नाखुश होने पर वह अजीब तरह से घुन्ना जाता है। मतलब, उसने लानत गिराते हुए कहा।

'कौन-सा घोड़ा यार... सदर्न या हैक्टर?'

रेसकोर्स के एक नवोदित की जिज्ञासा अभी-अभी संपन्न हुई दिन की इस तीसरी दौड़ का नतीजा जानने को मचल रही थी। इधर-उधर घूमते और रेलिंग के निकट खड़े होकर देखनेवालों के अलावा दूसरे तमाम दर्शक रेस पूरी होते ही उठ खड़े हुए जिसकी वजह से, संपर्क टूटने से यह (जिज्ञासा) यूँ ही टँगी रही। चार-छह लोगों को आदतन-सी 'एक्सक्यूज मी' कहकर जब में 'गैलप्स' के स्याह और एंटिक टच से बिंधे गेट पर पहुँचा तो मानस इंतजाररत था।

किसी रेसकोर्स में किसी रेस को देखने का आज यह मेरा पहला मौका था। दक्षिण मुंबई क्षेत्र में एक तरफ महालक्ष्मी स्टेशन और दूसरी ओर हाजी अली (दरगाह) के बीच सवा दो सौ एकड़ के विस्तार में फैले इस रेसकोर्स (दूसरा नाम टर्फ क्लब) की गरिमा और रौनक देखते बनती थी। पहली, दूसरी और तीसरी मंजिलों पर बनी ढलवाँ दर्शक दीर्घाओं में क्लब-सदस्यों के लिए बाकायदा नामजद मेज-कुर्सियों पर बैठकर सामने पेश अंडाकार हरियाली की परिधि पर आजमाइश करते घोड़ों को देखने की अय्याशी मुहैया थी तो दूसरों को अपनी तरह से मौज-मस्ती करने की सहूलियत। ज्यादातर अधेड़ों और उनके साथ घूमती कमउम्र चश्माधारी (ज्यादातर घोर काले और डिजाइनर) महिलाओं को देखते ही दृश्य फिल्मी-सा हो जाता। या शायद उससे भी दिलकश क्योंकि यहाँ चहल-पहल और पुलक की हद महसूस की जा सकती थी। हुजूम के बीच में हर जगह छायी व्यवस्था और अपने-अपने अनुमानों की कमोबेश पुख्तगी या सदमों की सताई बेतरतीब चर्चाओं से बनता-बिगड़ता आलम उच्च-मध्यवर्गीय जीवट के अहसास से भिनभिनाए जा रहा था। एक बार लगा, कई

बार जिन चीजों के बारे में हम पूरा नहीं जानते हैं उन्हें कितनी आग्रहपूर्ण आँख से देखते हैं।

दरवाजे के दूसरी तरफ वाली खिड़की के साथ लगी छोटी मेज के दोनों तरफ, इत्तफाक से तभी खाली हुईं कुर्सियों पर जैसे ही हम बैठे कि मैंने उसे पकड़ लिया 'सदर्न एंपायर या हैक्टर? कौन अव्वल रहा मानस?'

मेरी कंपनी की एच.आर. मोड्यूल की एक ट्रेनिंग के दौरान हमें यह गुरुमंत्र थमाया गया था कि कभी किसी को आत्मीय गुहार करनी हो, तुरंत उत्तर जानना हो या आइंदा के लिए रास्ता प्रशस्त करना हो तो संबोधन में कहीं नाम जरूर ले आना चाहिए। कहते हैं बात बढ़-चढ़कर वार करती है।

मगर इस बार नहीं क्योंकि बात को अनसुना-सा करते हुए, अंदर बैठते ही उसने बेफिक्री से पूछा, 'किंग फिशर या फोस्टर्स?'

मेरे 'फोस्टर्स' कहते ही पास से गुजरते वेटर को उसने 'दिलावर, टू फोस्टर्स' कहा ही था कि तभी उसे किसी करीबी रेसकोर्सी ने पकड़ लिया। करीबी देर तक उसके कानों में खुसफुसाता रहा। कभी सोचता कभी प्रतिवाद करता मानस नतीजतन तरह-तरह के मुँह बनाये जा रहा था, वेटर ने बीयर के साथ कुछ खाने के लिए भी पूछा तो उसने बिना मेरी तरफ देखे, हाथ के संकेत से ही मना कर दिया। बात पूरी होने पर वह आदमी जब चला गया तो, मेरी तरफ मुड़कर जाहिरन कुनमुनाते हुए वह बोला, 'आज समझ नहीं आ रहा है कि यह हो क्या रहा है... हर रेस में सारे फेवरेट्स ही जीत रहे हैं। अभी 'सदर्न एंपायर' जीता और अगली के लिए 'मिस्टीकल' की टिप आई है...'

'तो इसमें दिक्कत क्या है?'

मेरा दिमाग किसी अज्ञानी की तरह निश्चिंत था। मगर मुझे राहत मिली कि अनजाने ही, इतनी देर से भले, उसने मेरी शंका का समाधान कर दिया। इस बात पर अलबत्ता हैरानी जरूर हुई कि अगली रेस, जो थोड़ी देर में शुरू होनेवाली थी, जिसमें दाँव लगाने की घोषणा हल्के शोर-शराबे के बीचोबीच अंदर लगे स्पीकर के जरिए लगातार की जा रही थी, उसमें जीतनेवाले घोड़े की टिप इस समय-जबकि रकाब कसे घोड़े बाड़े (पैडॉक) में उतर चुके हैं-किस बिना पर दी जा सकती है।

'किसने टिप दी है?'

मुझे कुछ अता-पता नहीं था फिर भी उसकी दुनिया में उतरने की सलाहियत ओढ़ ली।

सवाल पूछने में क्या जाता है?

'थी तो एक खास और विश्वसनीय टिप।' उसने संजीदगी से सिर हिलाते हुए कहा।

'अच्छा।' मैं आश्चर्य में दब गया, 'तो इस बार 'मिस्टीकल' पर लगा दिया जाए' जैसा कुछ सुझा भी दिया।

किसी क्षेत्र में नौसिखिया या अनजान होने का यही फायदा है। हर मामूली जानकारी भी अहम और जरूरी लगने लगती है। 'लेकिन मेरा मन कहता है कि फेवरेट्स बहुत हो लिए। द लॉ ऑफ एवरेजिज मस्ट प्रिवेल' अभी आई उदासी को चीरते हुए एक गरम और लहलहाती आवाज के साथ उसने मेज पर थपकी जड़ दी।

उसकी सलाह पर रेस्टोरेंट में लगे काउंटर से टिकिट मँगाकर मैंने भी 'मिस्टीकल' की बजाय 'इनोवेटर' पर दाँव लगा दिया।

वेटर, यानी मानस का दिलावर, दो गिलासों में फोस्टर्स उड़ेलकर चला गया था। कैश काउंटर के सामने एक एल.सी.डी. थी जहाँ से रेसकोर्स की हर गतिविधि बखूबी हम तक पहुँच रही थी... पैडॉक में विचरते घोड़े, विजेता को मिलनेवाली मर्सिडीज के पास सुर्ख़ लाल लिबास में पोज देती कोरियाई मॉडल, एल्विस प्रिसले की दुम बना फिरता नील बर्नीस नाम का फिरंगी गायक, मादक और फूहड़ दोनों तरह के सैलिब्रिटीज के क्लोज-अप। कमेंटेटर तो खैर था ही। इसी कारण रेसकोर्स में पहला दिन होते हुए, तीन दौड़ों के बाद मुझे वहीं बैठकर बीयर-पान करने में कोई हर्ज नहीं लग रहा था।

और वाकई, गहमागहमी और असमंजस के बीच किया मानस का फैसला बड़ा अचूक साबित हुआ। 'इनोवेटर' का रेट बारह का था। यानी, उस फोस्टर्स का आखिरी घूँट पीते-पीते अपन बारह हजार का मुनाफा बटोर चुके थे।

'इसे कहते हैं बिगनर्स लक!' अपने परामर्श और विवेक पर तसल्ली भरते हुए उसने मेरी पीठ थपथपाई।

'लेकिन इतने कम रैंक वाले घोड़े को तुमने... वाइल्ड गैस या कुछ और...' अपनी रेस-बुक से तिनके-सा कुछ मैंने भी चूँट लिया।

हार को हम अकसर भूलना, भुला देना चाहते हैं मगर जीत के बाद हम उसके कारणों में विचरना, भटकना चाहते हैं जो दरअसल उसके जश्न का हिस्सा होता है।

'इसकी वजह रही ये कि आज इसका राइडर सैयद जमीर था। कोल्ट तो रामास्वामी का ही है मगर इसका ट्रेनर जदमल सिंह है। सैयद सत्ताइस का है मगर है खूब फिट और तजुर्बेकार। उसका विन-परसेंट बीस से ऊपर है। इस सीजन की टॉप रेसों में उसके सभी घोड़े प्लस रैंकिंग में रहे हैं। और सबसे बड़ी बात यह कि आज वह तीन नंबर की लेन में दौड़ रहा था जो सैयद को सबसे ज्यादा सूट करती है...'

'भाई थोड़ा रुककर, धीरे-धीरे, सँभलकर बता। सबको अपने जैसा मत समझ... तीन नंबर की लेन, ट्रेनर का विन-परसेंट, प्लस रैंकिंग... मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा है...' उसके बेलगाम भागते तकनीकी विश्लेषण को मैंने अड़ंगी मारी।

मेरी लाचारी पर वह पिघल-सा गया।

'आयम सॉरी यार... वो क्या है कि न चाहते हुए भी जुबान पर रेसिंग की दुनिया छा जाने लगती है। एक दिन में तो खैर तुम क्या सीखोगे। हाँ, शौक रखते हो तो हर खेल की तरह इसके भी बेसिक्स तो आने चाहिए वर्ना...' वह बेबाक हुए जा रहा था।

'इस बुढ़ापे में क्या खाक मुसलमाँ होंगे। कभी किसी खेल का शौक ही नहीं पाला। पूरी जिंदगी पहले एकाउंट्स सीखने, कंपनियाँ बदलने, पोर्टफोलिओ बनाने, नेटवर्क खड़ा करने और रणनीतियाँ बनाने में निकल गई।' न चाहते हुए भी मेरे भीतर कहाँ-कहाँ के गिले उमड़ने लगे। किसी तरह उन्हें समेटकर बोला, 'मुझे घोड़ों या घुड़दौड़ों के बारे में कुछ नहीं पता... सिवाय इस परम सत्य के कि कुछ घोड़े दौड़ते हैं, उन्हें ऐड़ लगाते सवार होते हैं, खूब इनाम और सट्टा होता है और... और हमारे-तुम्हारे जैसे दो-चार मध्यवर्गीय नामुरादों को छोड़ ज्यादातर शौक फरमाते बिगड़ैल अमीरजादे (और जादियाँ!) होते हैं...'

मेरी सपाट स्वीकारोक्ति ने उसके भीतर कुछ झनझनाहट पैदा कर दी होगी तभी तो बीयर के दो लंबे घूँट खींचकर खाली गिलास मेज पर हल्के से पटक दिया और मुँह पोंछते हुए रहस्यमय ढंग से - जिसे मुझ पर खाये पवित्र रहम की संज्ञा दी जा सकती थी - मुस्कराने लगा। उसी क्रम में हाथ उठाकर वेटर को बुलाया और खाली बोतल की तरफ इशारे के साथ 'वाघले, रिपीट द ऑर्डर' कहकर उसे चलता किया। आधे मिनट में आई बीयर बोतल सलीके से गिलास में उड़ेली, नए दौर का सामान्य-सा घूँट खींचा और ताजगी से मुखातिब होकर बोला, 'तुम्हें सी-फूड कैसा लगता है?'

'कैसा मतलब? अच्छा लगता है। आइ लव प्रॉन्स।'

मैंने जवाब तो दिया मगर होशियारी से बातों का रुख बदले जाने को ज्यादा नहीं समझ सका। 'तो तुम्हें मुंबई का बेहतरीन सी-फूड खिलाया जाए।'

'जरूर-जरूर।'

'वैसे तो कई हैं... फोर्ट में महेश लंच और तृष्णा फूड मगर मुझे नाना चौक पर गोल्डन क्राउन ज्यादा अच्छा लगता है।'

उसके चेहरे पर गोल्डन क्राउन की बोंबे डक और प्रॉन्स का स्वाद यूँ उभर आया मानो वे रियाज के बाद गाई मीर-गालिब की गजलें हों। जब उसे खयाल आया कि अपनी कंपनी के काम के सिलसिले में मुझे कभी न सोने वाले इस शहर में छह सप्ताह रहना है तो एक दोस्त और भला आदमी होने को प्रमाणित करते हुए, बातों-बातों में, मुंबई के खाने-खजानों की प्राथमिक बारीकियाँ पकड़ाने लगा जो मेरे लिए उस वक्त खासी अयाचित थीं।

दक्षिण भारतीय खाने के लिए हिंदुजा के पास 'कल्चर करी' के अप्पम और अरती पूवुवड़ा, वर्ली वाले 'कोपर चिमनी' का पंजाबी मलाई चिकन कबाब, चौपाटी पर 'क्रीम सेंटर' के छोले-भटूरे और ब्राउनी, चर्चगेट पर ईरोज के ऊपर बने 'स्टारटर्स एंड मोर' के बुफे लंच, ताड़देव पर 'स्वाति स्नैक्स' की दाल ढोकली, गारलिक पांकी, 'तेंदुलकर्स' (कोलाबा) का बैंगन का भुर्ता, बेबी कॉर्न और गोअन करी जरूर-जरूर आजमाने की उसने बिरादराना हिदायत दी। उसका कहना था कि, मुझे दिन में फ़ुर्सत मिले तो बीयर पीने 'कैफे मोंडेगर' भी जरूर जाऊँ ताकि माहौल का मस्त फिरंगाना अहसास हासिल कर सकूँ। कम दामों पर शाकाहारी खानों में बाबुलनाथ रोड के 'सोम' की पूरनपोली कढ़ी और गट्टे की सब्जी तथा उसी के नजदीक, विल्सन कॉलिज के आगे ऐन गिरगाँव चौपाटी पर 'क्रिस्टल' के राजमा-चावल और ठंडी खीर भी लाजवाब हैं। हाँ इन दोनों जगह तुम्हें बीयर पीने को नहीं मिलेगी। दक्षिणी मुंबई के खाने-खजानों की विश्वकोशीय जानकारी को अचानक और अकारण लुटाने के क्रम में अंतिम वाक्य उसने यूँ कहा मानो बीयर न पिलाकर ये जगह लोगों को कितने बड़े लुत्फ से महरूम करती हैं।

मुझे बात बदलनी पड़ी।

'क्या अगली रेस में कुछ आजमाइश का मूड नहीं है?'

'अरे मूड तो पूरा था मगर जैकपॉट तो निकल ही गया ना।'

संक्षेप में उसने जैकपॉट और सुपर जैकपॉट का फर्क, दाँव का तरीका और इनाम का लुत्फ भी बताया।

'शुरुआत करने के लिए छुटपुट दौड़ें कोई बुरी नहीं... आखिर धीरे-धीरे ही हमारे अनुमान सुधरते हैं मगर हमारे ध्येय में बड़ी दौड़ें और जैकपॉट ही रहने चाहिए क्योंकि जैकपॉट में आपको एक नहीं, उस दिन होनेवाली छह दौड़ों के बारे में दाँव खेलना होता है...'

'तुमने जीता है कभी जैकपॉट?'

मैंने उसे बीच में टोका तो उसने भी मुझे बीच में रोक दिया।

'पहली बात तो यह कि यह सवाल आगे किसी से नहीं करना। और दूसरी बात, ज्यादा जरूरी, यह कि घुड़दौड़ सिर्फ अलाँ-फलाँ रेस की जीत या हार के बारे में नहीं, यह दाँव लगानेवालों की समझ या यकीन के जायजे के बारे में ज्यादा होती है... घुड़दौड़ जिंदगी का आइना होती है दोस्त।'

'कैसे-कैसे?' आखिर में उसने बात को फलसफाना रुख दिया तो मेरी जिज्ञासा कुलाँचें भरने लगी। मगर तवे पर छींटे मारने की बजाय उसने अपनी रौ में उसे यूँ ही ठंडा होने दिया।

'क्या है समीर, हर गेम और प्रतियोगिता जिंदगी को समझने का अखाड़ा है। इस शोर-शराबे के बीच समझने-समझाने का आज तो मौका नहीं है मगर यह जान लो कि जीवन की जंग का हर दाँव-पेंच घुड़दौड़ के बरक्स देखा-समझा जा सकता है। आपकी पैदाइश, परवरिश, ट्रेनिंग, मौके और नसीब जैसी चीजें घुड़दौड़ के लिए कम जिंदगी के लिए ज्यादा अहमियत रखती हैं... घुड़दौड़ इकलौता ऐसा खेल है जिसमें खेलने-जीतने वाले असली खिलाड़ी रेसिंग ट्रैक से शायद ही वास्ता रखते हों...।' उस पर किसी पीर का रंग चढ़ने लगा था।

'चलो यार, जैकपॉट न जीत पाने का एक फायदा तो हुआ... मेरे दोस्त के भीतर बैठे मुरारी बापू का पता तो चल वर्ना...'

'...तुम हर बात मजाक में उड़ाने लगते हो।' उसने चुटकी भर नाराजगी जतलाई।

बातों-बातों में बीयर की दो-दो बोतलें गड़प ली गई थीं। मुझे जरूरी काम से एक व्यक्ति से मिलने की जल्दी नहीं होती तो मैं बाकी रेसें भी जरूर देखता और घुड़दौड़

(बल्कि रेस, सिर्फ) जिसके बारे में सब कुछ बताने-सिखाने का उसने वायदा किया था - के बुनियादी सबक उससे सीखता। आखिर मुंबई के लिहाज से ही सही मगर उतरती सर्दियों में यहाँ मुझे पूरा महीना और गुजारना था। उसकी संलग्नता बहुत कुछ कहे जा रही थी।

'अकेले!'

मैंने उसे बताया तो वह चौंककर बोला था, 'मुंबई में यार कौन अकेला रहता है। दिन भर मेरी कंपनी कभी टैक्नीकल सेशन तो कभी उपभोक्ताओं की प्रोफाइल जानने-समझने और उस सबके मुताबिक रणनीतियों में फेर-बदल करने के कामों में उलझाये रहती है। शायद ही कोई दिन जाता हो जब दफ्तर में रात के दस न बजते हों। इतनी सारी टूअरिंग और ट्रेनिंग रहती हैं। उनकी दिसंबर क्लोजिंग के चक्कर में अपने दो मार्च हो जाते हैं। और वैसे देखो तो मुंबई में कौन है जो अकेला नहीं है - मय घुड़दौड़ जैसी चीज में शामिल लोगों के हुजूम के...

'वाह गुरु! इतनी जल्दी बदला!!' उसकी जवाबी काट पर हम दोनों साथ ठहाका मारकर हँस पड़े, 'चलता हूँ, तुम अपना 'एवरेज' मेनटेन करो।'

'गोज विदआउट सेइंग।' उसने बैठे-बैठे ही आँख मूँदकर अपनी स्नेहभरी सहमति व्यक्त की।

शुरुआत से थोड़ा पहले

हाजिर जवाब तो उन दिनों भी वह क्या खूब था जब हम जमनालाल बजाज संस्थान में बिजनेस मैनेजमेंट के सहपाठी थे। आज की तरह तब वह एक सौ दस किलो का थुलथुल सूमो नहीं था। गोरा, इकहरा और ठीक छह फुटा। थोड़ी लंबी शोहदेनुमा ट्रेडमार्क जुल्फें उसकी अकादमिक हैसियत से ऊपरी तौर पर खासी बेमेल पड़ती थीं। दाढ़ी बहुत हल्की आती थी जिसे वह हफ्ते में एक बार काटकर भूल जाता था। खुद कॉमर्स की पृष्ठभूमि के कारण आधी चीजें पहले ही उसकी उँगलियों पर रहती थीं। सी.ए. हो चुका था और शेयर बाजार की बारीकियों पर बड़े खानदानी अधिकार से महारत कर चुका था। इकॉनोमिक टाइम्स में आए दिन उसके छुटपुट लेख-समीक्षाएँ छपती रहती थीं। भाषा के साथ अठखेलियाँ करते हुए बात कहने की उसके भीतर बड़ी नैसर्गिक प्रतिभा थी।

मसलन, इंग्लैंड की कर व्यवस्था पर लिखे एक तुलनात्मक आलेख का नाम था 'यू के छे?' उसके पिता का निर्यात का पुश्तैनी कारोबार था जिसमें शामिल न होने की उसने कसम खा रखी थी क्योंकि उस सबमें अध्ययन और समझ की दूर-दूर तक कोई दरकार नहीं थी जिसकी गंध उसके भीतर गहरे पैठ चुकी थी। चर्चगेट पर हॉस्टल के मेरे कमरे पर देर तक गप्पें करने वह अकसर आ जाया करता था। उसके सामने मैं हर लिहाज से उन्नीस पड़ता था मगर किन्हीं अज्ञात कारणों से उसकी मेरे साथ छनती थी। अंग्रेजी तो फर्राटेदार थी ही, जिस लहजे और रफ्तार से वह हिंदी बोलता था उससे वह राजभाषा के 'ख' क्षेत्र का तो कतई नहीं लगता था। हम लोग शाम को मरीन ड्राइव की बरसों से टूटी, मरम्मत के लिए कराहती जगह-तलब युगलों और दूसरे अनगिनतों का सहारा बनी मुँडेर पर समुद्र की तरफ मुँह करके दुनिया-जहाँ की बातें करते... बातें जिनमें सुनहरे सपनों के साथ कुछ भीतरी डर और चिंताएँ गुथी रहतीं... सहपाठियों और इस-उस की अंतरंग बुनावट की बातें, गावस्कर और तेंदुलकर की बातें, मनमोहन सिंह और मुद्रा-कोष की बातें... मुंबई की बरसात और लड़कियों के इंतहाई अल्हड़पने की बातें। पीछे 'सम्राट' के पहले माले पर बैठकर बीयर शेयर करते, कभी मध्यरात्रि के बाद 'ताज' की कॉफी शॉप में बॉटमलैस कॉफी के मग पर मग चढ़ाते और आनेवाले सत्र की तैयारी के प्रति बेफिक्र होकर इस बात पर सलाह-मशविरा करते कि आगे कहीं नौकरी करना ठीक रहेगा, खुद की कंपनी डालना या फिर ऐकेडेमिक्स का रास्ता।

समय के हिसाब से थोड़ी जल्दी थी मगर उन दिनों ही अपनी रगों में बहते कारोबारी खून से बगावत करते हुए एक परामर्शक के तौर पर वह अपने भविष्य को देखने लगा था जबकि उत्तर भारतीय मध्यवर्गीय शराफत का मारा मैं किसी बड़ी कंपनी में मोटी तनख्वाह के इरादे रखता। अपने दोयम अध्यापकों की वह इतनी अच्छी मिमिक्री कर लेता था कि उसकी चौतरफा प्रतिभा पर मुझे हैरानी कम रश्क अधिक होता। यूँ मेरा कैरियर ग्राफ कोई बुरा नहीं था मगर उसे देखकर भगवान को गरियाने का मन करता जिसने इतनी फराखदिली से उसकी झोली भर रखी थी। क्लास बंक करके सुनील शेट्टी तक की फिल्में देख डालने के बावजूद वह क्लास का बादशाह बना रहता। उसके और हमारे जैसे दूसरों के बीच अंतर इतना ज्यादा था कि कभी-कभी लगता कि यह नरीमन पॉइंट घाटकोपर में आकर क्या कर रहा है। उसने बाद में मुझे बताया भी कि उसका आई.आई.एम. अहमदाबाद में दाखिला हो गया था मगर व्यवसाय में हुए घाटे की वजह से अवसाद की चपेट में आए पिता की नाजुक हालत ने उसे वहाँ जाने से रोक दिया। बाद के दिनों उसका अवनी वकील के साथ मिलना-जुलना शुरू हो गया था जो, बात घटिया लगे, हमारे लिए अच्छी खबर थी। चलो, उसका ध्यान कुछ तो इधर-उधर खपेगा। अवनी जेवियर में पढ़ती थी। नाना चौक से थोड़ी ही दूर ओपेरा हाउस के

इलाके में रहती थी। बाद में अवनी ने ही बताया कि उन दोनों की दोस्ती की चिंगारी, यकीन करें, टेलीफोन का गलत नंबर लगने से हुई थी (आह! जीवन के ऐसे संयोग)।

कहना होगा कि तब वह बला की तो नहीं मगर खासी सुंदर थी। हम लोगों से दो-तीन साल छोटी और गदबदी होने के बावजूद (या शायद इसी कारण) आकर्षक लगती थी। प्रारंभ से ही दोनों अधिसंख्य गुजरातियों की तरह बड़े वयस्क किस्म के इश्क के मारे लगते थे : अर्थात उस दौर की छिछोरी या दिखावटी कही जानेवाली किसी हरकत में पड़ते नहीं दिखते थे। अवनी विज्ञापन के कोर्स में थी और मानस के मेरे जैसे दूसरे मित्रों तक को लगता था कि गर्मजोशी से पेश आती है। हमारा कोर्स पूरा होते-होते दोनों ने, घरवालों की रजामंदी से शादी भी कर ली थी जो हम जैसों के लिए चौंकानेवाली बात थी क्योंकि हम सोचते थे इससे मानस के कैरियर विकल्प सीमित हो जाएँगे।

हम सोचते थे हम ठीक सोचते थे।

मानस सोचता था हम गलत सोचते थे।

हम दोनों ही गलत साबित हुए। जो शहर उम्मीद और अवसरों का समुद्र बना हुआ हो उसे छोड़कर जाने की हमारे जैसा दिल्ली के जहाज का पंछी सोचे तो उसकी सोच मगर मानस ठक्कर क्यों सोचता? नाना चौक पर नैस बाग सोसाइटी के पीछे 'समर्पण' फ्लैट्स में उसका अपना पुराने ढाँचे का घर था। एक किलोमीटर के दायरे में चौपाटी और मरीन ड्राइव थे। दो किलोमीटर पर हैंगिंग गार्डन और मालाबार हिल्स। सब तरफ गुजराती समाज!

'मगर उससे क्या?'

उसने माना कि इलाके में बरसों रहने के बावजूद वह अवनी के इस सवाल का देर तक कोई उत्तर नहीं दे पाया था। एक परामर्शक के तौर पर सुदीप पारिख के साथ उसने स्टॉक और फाइनेंस कन्सल्टेंसी का काम-काज जमा लिया था जिससे उसे दस लाख से ऊपर की सालाना कारोबारी आमदनी हो जाती थी। शेयर बाजार का तो वह उस्ताद था ही इसलिए खयाली नुकसान मिलाकर भी तगड़ा कमा लेता था। कोई दस वर्ष पहले संयोग से हुई चुटकी-सी मुलाकात के बाद मुझे यही थोड़ा-बहुत पता चला था।

'कहाँ गई तुम्हारी एकेडेमिक्स, इकॉनोमिक टाइम्स के लेख, डी-मर्जर और पता नहीं क्या-क्या?' मिलने पर मैंने सीधे-सीधे जानना चाहा तो कुछ चिढ़ते हुए वह बोला था,

'तुम साले लूटो एक से एक बड़ी वित्त और सॉफ्टवेयर कंपनी को, जॉब हॉप करते रहो और मैं सिर्फ हाजिरी के चक्कर में थोबड़ा उठाए फिरते नामुराद बेशऊरों को परफोर्मेंस और सिस्टम ऑडिट की प्रविष्टियाँ पढ़ा-पढ़ाकर खुश होता रहूँ। आई हैड एनफ ऑफ ऑल दैट शिट मैन...' उसने ऊपरी तौर पर तंज कसा था।

फलक पर तैनात मसीहा का धरती की आवारा भटकन में महसूस किए जानेवाले सुख की यह खोज, मेरे जैसे उसके मुरीद के लिए हौलनाक ढंग से दिल तोड़नेवाली थी। मगर क्या करता? पढ़ाई पूरी करके थोड़े अनमनेपन के साथ मैं कब का दिल्ली चला गया था और पंद्रह साल के वकफे में आठ से ऊपर कंपनियाँ बदल चुका था। एक अदद सरकारी नौकरी के सहारे उम्र भर नाक की सीध में चलते रहने की पैतृक नैतिकता बहुत पहले दम तोड़ चुकी थी। मैंने चाहा नहीं था मगर कुछ मिले-जुले दो तरफा कारणों से दो-चार नहीं, पूरे दस वर्ष तक की गृहस्थी टूट गई थी। साल भर पहले पूरी हुई तलाक की दिल तोड़ (हाँ भाई, चीता भी पीता है!) प्रक्रिया के बाद, मैं काम, संगीत, फिल्में, नेट-सर्फिंग-वर्फिंग और चंद दोस्तों के सहारे अपने जीवन के मुगालतों को अगुवा करने में लगा था। यह जीवन बेहद अनिश्चित और असुरक्षाओं से भरा था मगर इसी ने जीवन के इतने झरोखे एक साथ खोल दिए थे कि गृहस्थ नाम के उस कीड़े के दंश से छूट जाने का खयाल मात्र रोमाँच और राहत से भर डालता था। पिछले दिनों चीजें वैसे भी इतने तेज और दिलचस्प ढंग से बदली थीं कि किसी चीज पर टिककर सोचने या गिला करने की फुर्सत नहीं रह गई थी। फिलहाल अपनी इस अमरीकी बहुराष्ट्रीय (आप लफ्जों के विपर्यय पर गौर करें) कंपनी के इस मोड्यूल में मुंबई आने का मेरा दूसरा लालच दिल्ली के उस जगमग और छद्मों से छलछलाते जीवन से बदलाव के तौर पर थोड़ी निजात पाना भी था।

मानस ठक्कर से संपर्क कब का टूट चुका था। उसने यथासंभव अपने सारे नंबर बदल डाले थे। संपर्क के लिए मुझे 'समर्पण' जाना पड़ा जहाँ से वह कब का कूच कर गया था। इलाके की बाहर से धूसरित दिखती दूसरी बेशुमार इमारतों जैसे चौथी मंजिल के उस घर में उसके विधुर पिता अकेले रहते थे। उन्होंने ही बताया कि चार बरस पहले, सत्ताईस फरवरी मंगलवार के रोज, अवनी बच्चों के साथ लिटिल गिब्स रोड पर मानस द्वारा कुछ बरस पहले बुक कराये अपार्टमेंट हाउस में खासी फजीहत खड़ी करके चली गई थी। 'मानस को भी जाना पड़ा। अच्छा हुआ, दोनों के बीच कुछ-न-कुछ क्लेश रोज होता था। फोन पर कभी-कभार हाल-चाल पूछ-पाछ लेता है या आ-ऊ जाता है मगर उसे भी फुर्सत कहाँ है।' उनके स्वर में ओढ़ी हुई बेलाचारी थी। इससे मैं इतना डर गया कि मानस की माँ की मृत्यु और उनके एकाकी वर्तमान की जिज्ञासा को दबोचे रहा।

'आज का वक्त ही ऐसा है... बड़े शहरों में... सब बिजी रहते हैं।' मैंने समझाने की हल्की कोशिश की तो पोपले मुँह के टेलीविजन के मरीज वह बुजुर्ग भड़क उठे और मेरे लिए एक से एक जानकारी आक थू के चक्तों की तरह खरखराकर फेंकने लगे। उनके मुताबिक अब वह करता ही क्या है? कॉलिज की अध्यापकी में कितना वक्त जाता है? आर्टिकलों के सहारे किसी का दफ्तर चलता है? कितनी तो रिटेनरशिप छूट गईं। कहाँ-कहाँ के जुए-सट्टे खेलता है। अवनी ने नौकरी पकड़ ली है और अकसर यात्राओं पर रहती है जिससे बच्चे (बेचारे! उन्होंने अतिरिक्त मुँह बिचकाया) अलग बिगड़ रहे हैं। वित्त संबँधी कुछ अंदरूनी खुलासे भी वे ताबड़तोड़ अंदाज में करने लगे। 'दस-दस साल पुराने शेयर बेच दिए... पता नहीं कहाँ-कहाँ से कर्जा लेकर नया घर लिया है... चलो ठीक है, गृहस्थी तो सुखी रहे...' आखिर में वे जैसे कहीं से कुछ बताते-बताते लौट आए।

मुझे खबर नहीं थी कि मानस अब किसी कॉलेज में पढ़ाने लगा था, बीच में बिड़ला ग्रुप की किसी कंपनी का व्यापार विकास प्रमुख रह चुका था या केतन पारिख की किसी शेयर घोटाला योजना का हिस्सा रह चुका था। तो, एकेडेमिक्स में वापसी एक मजबूरी थी, मैं इस पहेली को सुलझाने में लगा था कि शून्य में ताकते हुए वे बोले, 'आदमी दो ही चीजों की वजह से फँसता है : या तो लालच की वजह से या फिर विश्वास'। शेयर्स, केतन पारिख और लालच के बीच की धुँधली-सी कड़ी तो मुझे दिख रही थी मगर विश्वास? इससे उनका तात्पर्य? 'कोई आप पर विश्वास कर लेता है तो आप बँध जाते हो। नहीं भी कर पा रहे हों तब भी उस काम को पूरा करते हो। सन् तिरानवे के ब्लास्ट में अवनी के पिता चले गए थे। हमने सोचा अपने ही समाज की है, बिन बाप की थी तो और ज्यादा बेटी की तरह रखा... खैर'। शायद उन्हें लगा कि पंद्रह साल पहले डेढ़-दो साल बेटे का दोस्त रहे एक लगभग अजनबी को इतना भी करीब क्यों भटकने देना चाहिए।

'अवनी ने भी कहीं नौकरी पकड़ ली है। कोई खास बड़ी नौकरी नहीं है मगर किसी कीमत पर उसे छोड़ना नहीं चाहती है। इसलिए उसे ही मजबूरन यह फैसला करना पड़ा।' अभी तक हिकारत या अफसोस के कारण मेरी तरफ से छायी चुप्पी को ताड़ते हुए उनके स्वर में समझाइश उतरने लगी।

'क्या बुरी है। आजकल कॉलिज टीचर्स क्या कम कमाते हैं।' मुझे कहना पड़ा हालाँकि जानता था कि उस जैसे धुरंधर के लिए अध्यापन के पेशे में प्रवेश कितनी समझौता भरी उतरन का बाइस रहा होगा।

'नहीं वैसे कुछ नहीं तो ऑडिट की प्रैक्टिस तो है ही... कायदे से ध्यान दे तो इन्वेस्टमेंट कंसल्टेंसी में भी खूब स्कोप है मगर इसे कुछ समझ आए तब ना... पहले स्टॉक एक्सचेंज में गँवाता था, आजकल रेसकोर्स में' जीवन के चौथे पहर में एक निर्बल बूढ़ा अपने अकेलेपन और मुश्किलों को भूल-भालकर अपने अधेड़ पुत्र की जाया होती जिंदगी के विलाप में निमग्न हुए जा रहा था।

बाद में जब मैं मानस से मिला तो उसके पिता से मुझे बरामद हुई जानकारियों पर उसे उदासमना हैरानी हुई। बच्चों के स्कूल और दूसरी सामान्य जानकारियों की उत्साहवर्धक अदला-बदली के बाद, उस खुश-खुश हालत में ड्राइव करते हुए हम वरली सी-फेस की तरफ निकल आए थे। शाम का वक्त होने की वजह से समुद्र से सटी मील भर लंबी कदम-पट्टी पर टहलकदमी करनेवालों का ताँता लगा था। भाटे के कारण समुद्र में दूर तक काले पत्थरों की ऊबड़-खाबड़ दिख रही थी और कच्छप गति से खिसकता बांद्रा-वरली सी-लिंक का अधूरा ढाँचा अपने अस्थि-पंजर दिखा रहा था। खुली प्रदूषण मुक्त हवा, समुद्र का सहारा और सैर के लिए इतनी उम्दा कदमपट्टी को देखकर किसी का भी जी ललचा जाए।

वह इस बात को लेकर चिंतित लग रहा था कि मैं अकेला कैसे रह लेता हूँ... शादी तो नाम ही समझौतों का है... जो हुआ सो हुआ लेकिन अभी मेरी उम्र ही क्या है जैसी जाहिर मन बहलाव की बातें। बातें जिनको मैं एक कान से सुन दूसरे से निकालने में सहज रहता था।

'अरे यार दुनिया कहाँ से कहाँ चली गई और तुम गृहस्थी के टूटने का रोना रो रहे हो। कौन चाहता है गृहस्थी टूटे? इससे बड़ा सुख-जाल और क्या है मगर गृहस्थी, तिहाड़ और तन्दूर के बीच फर्क रहना चाहिए या नहीं?' उसकी आत्मीयता बढ़ते देख मेरे भीतर का उबाल फट पड़ने को हो आया। निजी सहूलियत और सामाजिक गरिमा-प्रतिष्ठा की आड़ में कितने दिनों मैं सब कुछ सामान्य दिखने का ढोंग करता रहा था। मगर अब क्यों? वह आगे कदम धरता तो मैं उसके लिए भी तैयार था। मगर वह नौबत नहीं आई। वह चुप हो गया और कुछ सोचता हुआ निशिता टैरेस के तीसरे माले की बालकनी पर खड़े, नीचे निहारते एक जोड़े को देखने लगा। मैंने भी देखा और देखते ही लगा कि यही हाल मरीन ड्राइव का था... कि समुद्र किनारे बने एक से एक आलीशान घरों की बालकनियाँ कितनी उदास, अतृप्त और निर्जन पड़ी रहती हैं। फिर अपनी बात को सहमकर, साधकर उठाते हुए बोला, 'देह की अपनी जरूरत होती है... तुम अभी इतने बूढ़े नहीं हुए हो। देयर इज समथिंग कॉल्ड बायलॉजी... तुम इसे झुठला नहीं सकते...'

देह की बात पर मेरे भीतर उसकी एक सौ दस किलो की देह की, अभी तक छिपी हैरानी उभरने लगी। कहाँ वह कभी बस साठ-पैंसठ किलो का हुआ करता था। डॉक्टरी हिदायत के चलते उसके पीने की छूट बीयर तक सिमट गई थी मगर वह बड़ी निष्ठा से इसका पालन करता था। उसकी रोजाना की खपत का 'एवरेज' तीन बोतल का था। बीयर पर उसकी निर्भरता धार्मिक किस्म की थी यानी इसके लिए उसे किसी के संग-साथ की जरूरत नहीं थी।

'अरे झुठला कौन रहा है? ...एक विकल्प ही तो बंद हुआ है, दूसरे सैकड़ों तो खुले ही हैं या खुल गए हैं...' सामने एक सुडौल समृद्ध-सी दिखती अधेड़ को आत्म-संघर्ष करते देख बात कुछ सामयिक हो उठी।

'डू यू विजिट प्रौस?

उसने कुछ आशंकित होकर दरयाफ्त की। ऐसे सपाट किस्म के हमजोलीपने से मैं बचता हूँ मगर यहाँ कोई संभावना ही नहीं थी। आई हैव नो वैस्टिड इंटरेस्ट इन पास्ट।
'इसकी जरूरत क्या है? सब कुछ बड़े कायदे से निबट जाता है।'

'कैसे-कैसे?'

'कैसे-कैसे क्या यार... तुम मुंबई में रहते हो सब जानते होंगे फिर भी बन रहे हो...।'

'अरे मुंबई कोई एक शहर है... इस शहर में पता नहीं कितने एक-दूसरे से अनजाने शहर रहते हैं। तरह-तरह के व्यवसाय पेशे, शेयर-बाजार, फिल्में, संगीत, लोकल, थियेटर, होटल, मॉडलिंग, अंडरवर्ल्ड, मल्टीनेशनल्स, डिजाइनिंग, एक्सपोर्ट्स, सॉफ्टवेयर, बिल्डर्स, स्लम्स...' उसकी गिनती जारी थी।

'मॉडलिंग, मनोरंजन और मल्टीनेशनल्स तो तुमने कबूल कर ही लिए... महानगरों के संदर्भ में इनके बड़े दिलचस्प समीकरण बनते हैं।' मैंने सरसरी तौर पर बात समेट दी।

वहाँ से उठकर हम लोग फर्लांग भर दूर एट्रिया मॉल में कुछ देर घूमते रहे। अकेले आदमी के लिए ऐसे ठिकाने बहुत सूट करते हैं। अच्छे-बुरे जैसे भी, बदलते वक्त का मिजाज पता लग जाता है, कोई दबी-ढँकी जरूरत पूरी हो जाती है और सबसे बड़ी बात यह कि समय आपके अख्तियार में रहता है। अलावा इसके, छोटे-मोटे हिसाब बड़े आराम से 'चुकते' हो जाते हैं।

वहाँ से दस कदम दूर, कोपर चिमनी पर बैठकर दूसरी तफसीलें जानने की उसकी ख्वाहिश इस बिंदु से आगे नहीं बढ़ सकी। फिर एक बार मेरी मजबूरी थी।

मुझे अटपटा लगा था कि मानस का अपनी मंडली के किसी पुराने साथी से कोई टच नहीं बना हुआ था। नेट पर सर्च करने के बाद मुझे राखेचा के कोटक महिन्द्रा और शाबिर के बार्कलेज (बैंक) में कार्यरत होने की जानकारी मिल गई थी। उनसे फोन पर बातें हुई। मुलाकातें नहीं। उनसे और उसके पिता से जो असंबद्ध हासिल हुआ वह यही कि बड़े दिनों से अवनी अपने पाँव पर खड़े होने की जिद पकड़े थी। बच्चे अभी स्कूली कक्षाओं में ही जाते थे इसलिए मिलनेवाला हर छोटा-बड़ा उसके नौकरी करने की जिद को कुछ दिन और टालने की सलाह दे रहा था। मगर अवनी ने किसी की नहीं सुनी। लिटिल गिब्स रोड पर घर शिफ्ट करने के उसके फैसले ने दोहरा काम किया। पहले, मानस की अभी तक की जमा पूँजी पोली कर दी जिससे घर में पूरक आमदनी की जरूरत को पनाह मिली। दूसरे, 'समर्पण' से मुक्ति की दिशा में यह कम बड़ा कदम नहीं था क्योंकि एक पुराने, भीड़भाड़ वाले इलाके में बच्चों के खेलने-कूदने या खुली हवा में साँस लेने की किल्लत जैसे तमाम नए-पुराने कारण वहाँ अपनी तरह से मौजूद थे।

अवनी के नियोक्ता के बारे में कई अफवाहें थीं। उनके मुताबिक पहले वह हिल्टन टॉवर्स या ओबरॉय के बैक ऑफिस में सहायक थी फिर फ़्लोर मैनेजमेंट में गई, फिर एक विज्ञापन कंपनी में कॉपीराइट सहायक बनी, कुछ दिन एक बी.पी.ओ. में रही फिर एक एफ.एम.सी.जी. सेक्टर (यानी नून-तेल) की बहुराष्ट्रीय कंपनी के सेल्स प्रोमोशन विभाग से जुड़ी। बीच-बीच में डिस्कवरी या भगवान जाने किस चैनल के लिए वॉइस ओवर भी करती थी। अलावा इसके वह छुटपुट विज्ञापनों के लिए, अच्छी अंग्रेजी के कारण भाषा सहायक बन जाती थी। इन दिनों वह कथित रूप से मनोरंजन क्षेत्र की एक सॉफ्टवेयर कंपनी में कॉरपोरेट रिलेशंस देख रही थी।

लिटिल गिब्स रोड पर अवनी से चलते-चलते सी ही मुलाकात हुई क्योंकि वह तैयार होकर कहीं निकलने वाली थी। पंद्रह वर्ष पुराने परिचय के बावजूद वह ऐसे ठंडे और अजनबी रवैये से पेश आई जिसका मैं खूब अभ्यस्त था। 'आज भी छुट्टी नहीं?' मैंने गर्मजोशी से आश्चर्य व्यक्त किया तो शिथिलता से टालते हुए उसने बस इतना कहा, 'हमारे वीकली ऑफ अलग होते हैं।' उस सब-जीरो वातावरण में कोई अलाव जलाना संभव नहीं हो पा रहा था। हम लोग ग्लोबलाइजेशन और सेंसेक्स, बैंकिंग और सॉफ्टवेयर, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यवसायों के रीलोकेशन, पूना-बैंगलोर और गुड़गाँव के उभार, कार्बन क्रेडिट्स और ट्रांसफर प्राइसिंग के साथ-साथ तंत्र और

अर्थतंत्र की बातों से अपने बिसराये-से साझा अतीत को प्रासंगिक कर रहे थे... बातें जिनमें सिलसिलेवारी और ताप का उसका ट्रेडमार्क अंदाज जड़ से नदारद था। अलबत्ता उसकी जगह 'रेसकोर्स' और खाने-खजाने आ गए थे। वह मेरे लिए एक रहस्यभरा सदमा था (रियायत भी कोई कितनी दे!) इसलिए अगले सप्ताहांत महालक्ष्मी रेसकोर्स पर आने के निमंत्रण को मैंने मान लिया था।

तू शहसवार है और...

उस दिन शाम अभी डूबी नहीं थी। हमारा 'गोल्डन क्राउन' पर मिलने का प्रोग्राम बन गया। वह नियत समय से पहले ही पहुँच गया था और जीवन तथा दुनिया के सबसे प्रिय पेय-बीयर-के सेवन में लग गया था। आखिर असली निष्ठा तहजीब के छुटपुट नखरे कब उठाती है! मुझे याद नहीं कि श्रीपत आर्केड जैसी पैंतीस मंजिला इमारत ग्वालिया टैंक जैसे इलाके में पहले हुआ करती थी। आज तो यह मुंबई का एक मानक है। बहरहाल गोल्डन क्राउन के पहली मंजिल के 'पाइसिस' रेस्टोरेंट में जैसे ही मैं दाखिल हुआ, उसने दूर कोने वाली मेज से हाथ उठाकर आमंत्रित किया। ऑर्डर लेने के लिए जैसे ही पीछे-पीछे एक कारिंदा आया तो कुर्सी के पीछे पीठ सटाकर और सामने पैर चौड़ाकर बड़े अधिकार से बोला, 'मनोहर, साहेब दिल्ली थी आव्या छै। एमने सोंथी सरस प्रॉन्स अने बोंबे डक खवावानी छै। सारु छै तो आप' (साहब दिल्ली से आए हैं। इन्हें सबसे बढ़िया प्रॉन्स और बोंबे डक खिलानी है। अच्छी है तो दो)।

मनोहर थोड़ा झेंपा, थोड़ा मुस्कराया। इससे पहले वह कुछ कहता तभी मानस ने उसे कसा, 'क्या बात है, आजकल न गायकवाड़ दिख रहा है न शिर्के। शेट्टी तो है ना?'

मैं कहता था ना कि वह कभी उतना आम या कट्टर गुजराती नहीं रहा। जरा-सी देर में हिंदी में आ गया। पहले अपनी डेढ़-दो साल की दोस्ती के दौरान भी यही होता था। इसीलिए गुजराती मुझे कभी परायी भाषा नहीं लगी। हाँ, कोई काठियावाड़ी ही टकरा जाए तो जरूर हाथ खड़े करने पड़ जाएँगे। 'गायकवाड़ शादी करने गया है सर और शिर्के शिरडी गया है। शेट्टी तो बराबर है सर... किचिन सँभाल रहा है...'

उस अनजान तबियत के माहौल में मानस की आत्मीयता देख मुझे तुरंत उस रोज 'गैलप्स' में पी गई बीयर का खयाल आया। वहाँ भी सभी वेटर्स, दिलावर और वाघले समेत सभी से उसकी सीधी दोस्ताना पैठ थी। अगली मुलाकातों के लिए जब हम उसके चहेते ठिकानों पर मिले बैठे तो उसकी इसी प्रतिभा ने खानों की बारीकियों के साथ-साथ नाइक, जागतप, चोगले, काटधरे, जॉर्ज, गुलशन, परब और रमन समेत न

जाने कितने वेटरों से उसकी प्रगाढ़ करीबी जाहिर करा दी थी। 'क्यों न हो, वे उसे रोज रात ग्यारह बजे तक बीयर पिलाते हैं... अच्छे इनसान हैं।' उसकी अडिग राय थी।

थोड़ी देर बाद, किस्तों में, वह ट्रैक पर आ गया, 'देखो, रेस आदमी के मन के साथ सदियों से जुड़ी हुई है। यह आदमी की तरक्की का राज है। अपने हुसैन समेत एक से एक बड़े आर्टिस्ट ने दौड़ते हुए घोड़ों की पेंटिंग्स की हैं। की हैं ना? क्यों? क्योंकि घुड़दौड़ जिंदगी का आइना होती है। किसी भी दौड़ की तरह रफ्तार और स्टेमिना घुड़दौड़ के भी आधार होते हैं। इस रफ्तार और स्टेमिना को पहचानने का खेल है रेसिंग। तुम्हारे सुप्रीम कोर्ट (ये अच्छा है, दिल्ली में रहने से सुप्रीम कोर्ट अपना!) तक ने माना है कि रेसिंग सट्टा नहीं हुनर का खेल है...'

वह अचानक रुका। अपनी बात को बढ़ाने के लिए उसने अपनी रेस-बुक निकाली और बीच से खुल आए पन्ने पर लिखी इबारत को समझाने के लिए मेरी तरफ झुक आया। चालीस पार करने की चुगली करता नजदीक का चश्मा भी चढ़ाया। 'देखो घोड़ों को श्रेणियों में बाँटते हैं। मोटे तौर पर पाँच। कोई घोड़ा छोटी दौड़ अच्छा दौड़ता है तो कोई लंबी। यानी कोई स्प्रिंटर तो कोई स्टेअर। सबकी काबिलियत अलग होती है। अच्छी नस्ल के घोड़े करीब बीस हाथ (एक हाथ बराबर चार इंच) के होते हैं और सबसे छोटे (पोनी) कोई चौदह हाथ के। डर्बी सबसे ऊँची किस्म के घोड़ों के लिए होती है। रेस में भाग लेनेवाले घोड़ों का काफी आगा-पीछा तुम्हें रेस बुक से मिल जाएगा-बाप कौन था, माँ कौन थी। यह पता लगाना भी ठीक रहता है कि उनके माँ-बाप कौन थे क्योंकि इन्सानों की तरह घोड़ों में दौड़ने की फितरत और लियाकत काफी कुछ उनकी पैदाइश पर निर्भर करती है। जैसे भारत में 'रजीन' नाम का घोड़ा सबसे बड़ा स्टालियन (प्रजनन के लिए उपयोग किया जानेवाला) कहा जाता है।

इसके अंश से पैदा हुए कितने घोड़े-घोड़ियों ने बड़ी रेसें जीती हैं। 'प्लेसर विले' का भी अच्छा रिकॉर्ड है। आजकल 'चाइना विजिट' भी अच्छे रिजल्ट दे रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यही बात रहती है। 'स्मार्टी जोन्स' पिछले पच्चीस सालों का सबसे लोकप्रिय घोड़ा माना जाता है। ऐसे घोड़े अपनी उम्र में तो रेस जीतकर कमाई कराते ही हैं, ज्यादा बड़ी कमाई उनके स्टड फार्म पर जाने से होती है। और हाँ यह बात तो तुम्हें पता होगी ही कि तीन साल या उससे छोटे घोड़े को 'कोल्ट' कहते हैं और मादा को 'फिली'। डरबी में फिली दौड़ सकती है मगर फिलीज की डर्बी-इंडियन ओक्स-अलग होती है। एक घोड़े की उम्र अमूमन अठारह-बीस बरस होती है मगर रेस के लिहाज से पाँच-छह साल के बाद वह बेकार हो जाता है। उसके बाद वह स्टड फार्म, पोलो या

टूरिज्म के काम आता है। इन दिनों तो हो यह रहा है कि तीन साल की उम्र में ही घोड़े पीक कर जाते हैं।'

'उसके बाद बारी आती है उनकी ब्रीडिंग की। ब्रीडिंग का पहला सिद्धांत यही है कि ब्रीड द बेस्ट विद द बेस्ट एंड होप फॉर द बेस्ट। वह किसके फार्म पर पला-बढ़ा है, उसका ट्रेनर कौन है? हाँ भाई, घोड़ों की ट्रेनिंग होती है। डॉक्टरों (वैट) की देख-रेख में खाना-पीना होता है। वर्जिश करायी जाती है। मालिश होती है और स्टेमिना बढ़ाने के लिए स्वीमिंग वगैरा करवायी जाती है। ट्रेनर का रिकॉर्ड बड़े काम का होता है। अच्छा ट्रेनर वही है जो घोड़े की कुदरती क्षमताओं की पहचान कर उसकी प्रतिभा को विकसित करे। ट्रोटर या पेसर यानी पहले तेज और बाद में धीमा या पहले धीमा और बाद में तेज दौड़ने के लिहाज से ग्रूम करे। ट्रेनर को घोड़े की व्यायाम-पद्धति का निर्धारण तो करना ही होता है, अहम बात है उसका रख-रखाव। अब तुम ये देखो कि घोड़ा तो बेचारा बेजुबान जीव है। जो खिला दोगे खा लेगा, नहीं खिलाओगे-पिलाओगे तो अपनी तरह से एडजस्ट कर लेगा।

रेस में करोड़ों की हार-जीत होती है, बाजियाँ लगती हैं। किसके दम पर? घोड़ों के दम पर ही ना! मगर उन बेचारों को क्या मिलता है और क्या उन्हें वास्ता। मगर एक सही ट्रेनर घोड़े को येन-केन उसके अव्वल आने की जरूरत के लिए प्रेरित-उत्प्रेरित कर देता है... ऐसे कि रकाब चढ़ाते ही वह जानवर मैदान में जान छिड़ककर दौड़ने के लिए मचलने लगता है और जब तक उम्र इजाजत देती है तब तक दम मारकर दौड़ता है। अब जैसे रामास्वामी के फार्म पर राशिद बैरमजी है। पिछले पंद्रह सालों में उसके ट्रेन किए कुछ नहीं तो पचास घोड़ों ने बड़ी रेसें जीती हैं। डर्बी में ही उसने हैट्रिक बनाई है। घोड़ा जानवर है मगर इन्सानों को खूब समझता है। तुमने उस दिन पता नहीं देखा या नहीं-और यदि नहीं तो आगे किसी दिन जरूर देखना और गौर करना - कि रेस शुरू होने से पहले हर ट्रेनर पैडॉक में अपने घोड़े से कुछ बातें करता है। उसे पुचकारता सहलाता है। ये पल बड़े मार्मिक होते हैं। समझो दाँव लगाने के लिहाज से एकदम सटीक और काम के। यहाँ से आपको घोड़े के उत्साह और आत्मविश्वास की टोह लग जाएगी... उसका उत्साह दिखाती पूँछ कितनी उठी हुई है... रेसिंग ट्रैक पर जाने के लिए वह कितना मचल रहा है (ऑन द बिट), चौकन्नापन दिखाते उसके कान कितनी सतर्कता से उठे हुए हैं... एकाग्रता दिखाती उसकी गर्दन कितनी तनी और सधी हुई है। इतना ही नहीं, ट्रेनर घोड़े को साथ भागती भीड़ में रास्ता बनाना भी सिखाता है...

'रेस में बेटिंग के लिए एक और चीज को समझना जरूरी है। वो है हैंडीकैपिंग। दुनियादारी की दूसरी बातों को जाने दें तो समीर रेसिंग बड़े लेवल प्लेइंग खेल का नाम

है। हर रेस समान श्रेणी के घोड़ों के बीच होती है। जिन घोड़ों की उम्र सटीक हो (तीन-चार वर्ष), पिछली रेसें जीतकर या बेहतर प्रदर्शन करके आ रहे हों यानी जिनके जीतने की गुंजाइश अधिक हो उनके घुड़सवारों को अतिरिक्त वजन के साथ दौड़ना पड़ता है जबकि अपेक्षाकृत बूढ़े या कमतर रहे घोड़ों को कम वजन के साथ दौड़ने को मिलता है। घोड़ी होने की रियायत भी है। यहाँ तक कि इसी मूल मंत्र का कई ओनर्स-ट्रेनर्स गलत इस्तेमाल भी करते हैं। मसलन, वे कम इनाम या लो स्टेक्स की रेसों में जानबूझकर अपने अच्छे घोड़ों को नहीं जितवाते हैं ताकि भविष्य में 'सही' रेस में उसे कम वजन के साथ दौड़ने को मिले और वे मोर्चा मार लें। और कुछ नहीं तो वे घोड़े को ज्यादा पानी पिला देंगे...

'तुम्हें रेसिंग-बुक जैसी संक्षेप में इतना कुछ कहती दूसरी किताब नहीं मिलेगी। सीजन की तमाम छोटी-मोटी दौड़ों में शामिल सभी घोड़ों का कच्चा चिट्ठा तुम्हें यहाँ मिल जाएगा। हर दर्जे की दौड़ में (दूरी तथा घोड़ों के स्तर के हिसाब से) आजमाइश के लिए उतर रहे घोड़ों का पूरा खुलासा... पिछली तीन-चार रेसों में उसने कैसा प्रदर्शन किया, कितने वजन के साथ दौड़ा, जॉकी कौन था। हारा या जीता। जीता तो कितनी लेंथ (एक घोड़े की लंबाई जितनी दूरी) से। कभी जीत का अंतर गर्दन या सिर के आगे वाले हिस्से जितना होता है (जो फोटो-फिनिश में दर्ज होता है) तो उसे भी 'नेक' या 'शॉर्टहैड' के नाम से बताया जाता है। विजेता कौन था और उसकी टाइमिंग क्या थी। उस दौड़ में औसत टाइमिंग क्या थी और इस घोड़े ने वह दूरी उस औसत से कम (प्लस रैंकिंग) समय में पूरी की या ज्यादा में, पहले मोड़ तक (ट्रैक के अंडाकार होने के कारण) दूसरे घोड़ों की तुलना में इसकी क्या पोजीशन थी और अंततः वह कहाँ पहुँचा...

'हर घोड़े की चार-पाँच पिछली दौड़ों का यह हिसाब-किताब समझ लो तो जो ग्राफ बनेगा उसे पढ़-समझकर बात पता लग जाएगी कि फलाँ घोड़ा जीतेगा, टॉप थ्री में रहेगा या नाव्हेअर (यानी चौथे नंबर या उससे पीछे) करेगा। थोड़ा और गहरे उतरो तो इस बात का भी जायजा लग जाएगा कि फेवरेट के फेल करने के क्या आसार हैं, किस अल्पज्ञात के तुक्के (फ्ल्यूक विनर) की क्या गुंजाइश है और सबसे ज्यादा पाएदार विजेता (मोस्ट डिपेंडेबल विनर) का दम कौन भर सकता है। मोटे तौर पर तैंतीस प्रतिशत रेस फेवरेट्स ही जीतते हैं। मगर, मगर (बात की बारीकी पकड़ने-समझाने के लिए उसने दोहराया) इसका मतलब यह भी है कि सड़सठ फीसदी रेसें नॉन फेवरेट्स ले जाते हैं। और यही वह चीज है जो रेसिंग को इतना खुला और दिलचस्प बना देती है। यहाँ कोई सचिन तेंदुलकर या टाइगर वुड नहीं रहेगा...'

मानस ने अपनी बात को सोचा-समझा विराम दे डाला। बीच-बीच में कितनी बीयर पी गई, कितने खानों का लुत्फ लिया गया और कितने इतर किस्से आते-जाते रहे, इसका जिक्र जरूरी नहीं है। हाँ, तभी मेरी नजर उसकी उँगलियों में फँसी रंग-बिरंगी अँगूठियों पर गई। बिना पूछे ही उसने अलग-अलग रंगों के पत्थरों के महत्व और सप्ताह के दिन के मुताबिक उनकी जरूरत पर प्रकाश डाला और रेसिंग में बेटिंग के साथ उनके संबंधों की व्याख्या पेश की। इसी के साथ उसने अंकशास्त्र की बारीकियों और प्रभाव को रेखांकित करते हुए (किस नंबर की लेन) एक लंबा घूँट खींचा और बड़े संयत भाव से बोला, 'लेकिन एक चीज जो रेस को सबसे ज्यादा निर्धारित करती है वह है जॉकी। घोड़े-घोड़े के फर्क को तो हैंडीकैपिंग से मोटे तौर पर पाट लिया जाता है मगर जॉकी का कोई कुछ नहीं कर सकता है। घोड़े की पिछली परफोरमेंस के ग्राफ के साथ उसके जॉकी की जानकारी बहुत जरूरी होती है। किसी ओनर के एक से ज्यादा घोड़े रेस में हों तो जॉकी देखकर पता चलेगा कि वह किसे जिताना चाहता है और किसे नहीं। पिछले दिनों एक घोड़ा दिखा 'कल्चर शॉक'। बेहद बदमिजाज। वैसे खूब ताकतवर और तेज। मगर उसे काबू में रखना और दौड़ाना खेल नहीं था क्योंकि वह गुस्सैल सरे मैदान इधर-उधर भागने (बोल्ट करना) लगता।

बी प्रकाश जैसा तेज दिमाग और मजबूत जॉकी ही उससे सर्वश्रेष्ठ निकलवा सकता था। और वही हुआ। सन् तिरासी में वसंत शिंदे ने इतने गुमनाम घोड़े पर बैठकर डर्बी जीत ली थी कि 'इंडिया टुडे' ने उस पर कवर स्टोरी की थी। तुमने अमरीकी जॉकी बिल हारटैक का नाम नहीं सुना होगा। अभी पिछले दिनों उसकी मौत हुई थी। इतिहास गवाह है कि 'टाइम' मैगजीन ने फरवरी अट्ठावन में पहली बार किसी जॉकी को अपने कवर पर छापा था। बिल ने पाँच हजार से ज्यादा रेसें जीती थीं। सन छप्पन में उसने बीस लाख डालर जीते थे। वह मामूली घोड़े को चैंपियन बना देता था। कहते हैं कि वह घोड़े को इतना बुली कर देता था कि घोड़ा सब कुछ भूल-भालकर दौड़ने लगता। जॉकी अपनी जकड़ से घोड़े को बदहवास कर दे तो समझो बाजी उसकी। तो डियर, रेस का दारोमदार जॉकी होते हैं। ये मानो कि विजेता और दूसरों के बीच का फर्क घोड़ों की वजह से कम, जॉकियों के कारण ज्यादा होता है। इसलिए घोड़ों के पिछले रिकॉर्ड के साथ जॉकियों का जीत प्रतिशतांक (शामिल दौड़ों में जीती दौड़ें) यानी विन परसेंट जानना जरूरी होता है। एक बात और, हर जॉकी को ट्रेनर के साथ अपना जरूरी तालमेल बिठाना पड़ता है-घोड़े की तासीर जानने-समझने के लिए। वो इसलिए कि अपने उत्कर्ष (फुल बर्स्ट) में घोड़ा मात्र आधा किलोमीटर ही दौड़ सकता है। जॉकी यदि शुरुआत में यह करा लेगा तो हो सकता है वह पहले मोड़ तक तो लीड करे मगर अंततः पिछड़ जाए। उधर, यह काम जरा देर से हुआ तो यही जरा-सी देरी बड़े घाटे की

हो सकती है। इसलिए जीतने के लिए हर जॉकी को यह ध्यान रखना पड़ता है कि वायर (विनिंग पोस्ट) से आधा किलोमीटर पहले वह घोड़े को इस कदर दौड़ाए कि वह उस दूरी में अपना फुल बर्स्ट करे।

वैसे रेसकोर्स में जॉकियों का जीत से नहीं, हार से भी वास्ता रहता है। किसी ओनर या अपोनेंट के बेटिंग डिजाइनों को जॉकी को यकीन में लिए बगैर अंजाम नहीं दिया जा सकता है। कभी पैसे से कभी वैसे। इसलिए इनाम तो इनाम बेटिंग के मुनाफे में भी उसका हिस्सा रहता है। सारे बड़े जॉकी करोड़पति होंगे...' उसने गहरी साँस ली, बात की पिच बदलने के लिए। 'लेकिन हमारे जैसे लोगों को घोड़ों की पैडिग्री, उनकी परफोरमेंस का ग्राफ, ट्रेनर और जॉकी के साथ-साथ दाँव लगाने वाले शहर भर में फैले तीन सौ से ऊपर अनधिकृत बुकीज की नजर और नजरिए का भी सहारा लेना पड़ता है क्योंकि हमारी तरह उन्हें भी अलाँ-फलाँ घोड़े की जीत से नहीं अपनी कमाई से वास्ता रहता है। उन लोगों के दाँव बड़े होते हैं, भीतरी अहम जानकारियाँ जुटाने का तंत्र होता है और सबसे बड़ी बात यह कि हजारों-लाखों लोगों की पूँजी और समझ दाँव पर लगी होती है। दे रिप्रजेंट द मोस्ट फीयर्स एंड फीअरलैस वर्किंग ऑफ द मार्किट...'

कुछ देर थोड़ा सन्नाटा रहा। मेरी हर जिज्ञासा और पूरक प्रश्न का उसने भरपूर जवाब दिया। 'रेस में तो पता नहीं तुम क्या हारते-जीतते होओगे लेकिन मेरे जैसे रेसकोर्सी को तुमने जिस तरह यह समझाया है उसे देखकर मेरा पुराना यकीन पुख्ता हो गया है... कि तुम अध्यापक बहुत अच्छे होगे।' स्मृति में धँसे पुराने तारों की एक जोड़ कहीं बताती जा रही थी कि 'रिस्क एनालेसिस' के तहत माँटो-कार्लो मॉडल से किसी उद्यम का शुद्ध वर्तमान मूल्य निकालने और उसका जोखिमपना मापने के लिए जब (पहले) तरह-तरह के अवयवों मसलन, विदेशी मुद्रा दर की घट-बढ़, राजनैतिक वातावरण, बाजार की स्थिति, मुद्रास्फीति, कर-व्यवस्था, प्राकृतिक आपदा और वित्तीय पूँजी के सामंजस्य से जब किसी कायदेसर नतीजे (डिसीजन ट्री) पर पहुँचना होता था तो हरेक कारक को टिपाए जानेवाले 'वजन' पर मानस का परामर्श बड़ा काम आता था।

चलो अच्छा हुआ काम आ गई दीवानगी इसकी!

मैं खुले दिल से कह रहा था।

अपनी प्रतिभा की गालिबन अरसे बाद किसी से मिली कद्रदानी पर वह खिल उठा और लगभग बहकते हुए बोला, 'अच्छा तो मैं बहुत कुछ हूँ... रैदर, था... मगर क्या हुआ?' पित्ती की तरह अचानक उभर आई उसकी आत्मदया पर मेरे मन में कोई करुणा भाव

नहीं आया। यही लगा, अभी 'मैच्योर' नहीं हुआ है। हो जाएगा। जीवन का नरक किसे बख्शता है। ऐसे नाजुक मौकों को तूल नहीं देनी चाहिए। काजल फैलता है। अगली बार देखेंगे। बाकी बातें भी हो जाएँगी।

आइए मेहरबाँ...

अगली बार हम खैबर में बैठे। काला घोड़ा पर, जिसे यार लोग मुंबई की सांस्कृतिक पट्टी कह देते हैं। सामने जहाँगीर आर्ट गैलरी, प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बाजू में नेशनल म्यूजियम, मुंबई विद्यापीठ, ससून लाइब्रेरी और एल्फिस्टिन कॉलिज। एक-एक इमारत इतनी साम्राज्यिक भव्यता से जड़ी कि आप दिव्य अहसास से भर उठते हैं। पहली मंजिल पर एक के बाद एक जुड़े तीन-चार खाँचों में बँटे इस रेस्टोरेंट की मेरे जेहन में कोई स्मृति नहीं थी वरना उसकी गँवई मगर बेहद लुभावनी वास्तु-सज्जा भुलानी मुश्किल होती। हर मेज के लिए एकांत मुहैया था ताकि लोग तसल्ली से बोल-बतिया सकें। मुंबई कितना ध्यान रखती है। उसके भीतर बैठकर आप इस विडंबना पर भी गौर नहीं कर पाते हैं कि इतने कारोबारी इलाके-एक तरफ बोंबे स्टॉक एक्सचेंज, रिजर्व बैंक और दूसरे बड़े भारतीय-बहुराष्ट्रीय बैंकों के मुख्यालय और टाटा का बोंबे हाउस तो दूसरी तरफ कोलाबा का फुटकर व्यवसाय और होटल उद्योग-में कला-संस्कृति को इतनी जगह कैसे मिल गई है।

'कोई कला-संस्कृति नहीं है। सब बिजनेस है। शो-बिजनेस।' बात चलने पर उसने तपाक से निचोड़ा।

उसकी बात में कुछ सच भी लगा। महीने भर से 'बोंबे टाइम्स' देखते हुए (क्योकि उसमें पढ़ने को कुछ नहीं होता!) मैं दो-चार जोकर किस्म के उन 'कलाकारों' को पहचानने लगा था जो आए दिन जाहिर इतराती अदाओं में पेज-थ्री के लिए पोज देते रहते थे। बहुत पहले विज्ञापन की किसी किताब में सूक्ति पढ़ी थी : आर्ट हैथ एन एनिमी कॉल्ड एडवरटिजमेंट। कुछ हटकर या अलग करने और दिखाने का आग्रह इतना कि एक ने रँगों की एवज वाइन को कैनवास पर उड़ेलकर फ्रेम करा लिया।

'तुम गए हो किसी पेज-थ्री पार्टी में?' उसने तभी आई बीयर के घूँट के बाद होंठों को पोंछते हुए पूछा।

मैं आज अपनी 'ब्लडी मैरी' पर था। 'हाँ, हाँ, कई बार। कंपनी के प्रोडक्ट लांचिज के वक्त। बल्कि ऐसी ही एक पार्टी में जीवन का नया झरोखा खुल गया था...'

'कौन-सा झरोखा?' वह उतावली में आ गया।

'वही महानगरों में मल्टीनेशनल्स और मनोरंजन के आपसी संबंधों... क्वाइट इनक्लूसिव टाइप्स...'

'कैसे-कैसे?'

उसकी जिज्ञासा को टरकाने की वजह नहीं थी। यह 'बर्निंग सीक्रेट' पहले भी अनुत्तरित रह चुकी थी। 'ऐसा है मानस, मुंबई मुझे बड़े अंतरविरोधों और अजीबोगरीब विडंबनाओं का शहर लगता है - सिटी ऑफ एक्स्ट्रीम्स लिविंग इन फिफ्थ गीयर। अपने जमनालाल बजाज के दिनों के बाद यहाँ कितना कुछ बदल गया है... सबर्ब्स में फ्लाई-ओवर्स और मॉल्स आ गए, मरीन ड्राइव का कायाकल्प हो गया, हर चौराहे पर पेवर ब्लॉक्स बिछ गए। और तुम्हें क्या बताऊँ, मुझसे ज्यादा जानते हो। मगर फिर भी कितना कुछ पुराने आकर्षण से लबालब है... क्वींस नेकलेस, वीटी (स्टेशन) और पुराने ताज का वही विराट चुंबकीय जलवा है, 'एडवर्ड' टॉकीज पर अभी भी सन् साठ-सत्तर की फिल्में चलती हैं, कोलाबा कॉजवे के हॉकर्स सैलानियों को अभी भी मायानगरी की फैशनेबल यादें थमाते रहते हैं, 'बड़े मियाँ' की मोबाइल वैन पर देर रात तक लजीज कबाब के दौर, लोकल्स और टैक्सियों की अनुशासित गहमागहमी... दिल्ली की तरह नहीं कि हर ऑटोवाले का मीटर खराब... मैट्रो मल्टीप्लैक्स बन गया...'

'तुम कुछ भटक नहीं रहे हो...'

उसने कुछ भाँपते हुए आहिस्ता टोका तो मुझे भी लगा कि मैं किस सूरज को चिराग दिखाने बैठ गया। वैसे भी ज्यादा मुरीद तो मैं यहाँ की नियम-कानून से चलती व्यवस्था का था जो तमाम महानगरीय दबावों के बीच लोगों को अपनी तरह से कुछ भी करने न-करने की गुंजाइश देती है। तीन लफ्जों में कहना हो तो ऑर्डर, फ्रीडम एंड एनॉनिमिटी...' नहीं, मैं उधर ही आ रहा था। दिल्ली में एक पार्टी में मुलाकात हुई। पता है क्या है, ये पार्टियाँ धीमे-धीमे और देर तक चलती हैं। लोग अपने हिसाब से आते-जाते रहते हैं इसलिए काफी लोगों से मेल-मिलाप हो जाता है। हमारे प्रोडक्ट एड को जो एजेंसी डिजाइन कर रही थी वह उसकी लैंग्वेज हैड थी। पता लगा उसने लिटरेचर में एम.ए. कर रखा था। विज्ञापनों में कैसे आ गई? बस, यूँ ही। शौकिया। मैं खुश हुआ कि क्या बिंदास शौक है। बोलती भी बड़े शालीन नपे-तुले लहजे से थी। उससे मेरी अंतरंगता बढ़ गई। बाद में पता चला वह उस विज्ञापन एजेंसी में नहीं किसी पी.आर. एजेंसी के लिए काम करती थी। क्या काम? यही कि कंपनी के

एग्जीक्यूटिव्स के साथ दोस्ती-नजदीकी बढ़ाओ, उनहें सटल पॉजिटिव वाइब्स दो जिससे क्लाइंट्स को रेगुलर बिजनेस मिलता रहे। यानी एस्कॉर्ट्स। आज तो यह खुलेआम हो रहा है मगर उन दिनों यानी चारेक साल पहले यह सब दबे-ढंग से ही चल रहा था।

इनमें एक से एक पढ़ी-लिखी और फर्राटेदार अंग्रेजी बोलनेवाली लड़कियाँ-औरतें काम करती हैं। तुम यह देखो कि हमारे आसपास और कोर्पोरेट की दुनिया में रुपया-पैसा तो खूब है मगर परेशानियाँ भी कम नहीं हैं। कोई मेरी तरह अकेला या तलाकशुदा है तो कितने उसकी कगार पर हैं। मगर सबसे बड़ी बात है वैवाहिक जीवन से ऊब जिसने बड़े शहरों में अभी तक चलते इस कुटीर उद्योग का कोर्पोरेटाइजेशन कर दिया है। जैसे कुछ कंपनियों का काम दूसरी कंपनियों के शेयर खरीदना-बेचना होता है और उनका शेयर भी दूसरों की तरह लिस्टिड होता है, वैसे ही है इनका काम... दुनिया का सबसे पुराना धंधा होते हुए भी यह उससे अलग पड़ जाता है या कहो उसका विस्तार करता है। वे आपकी भौतिक से ज्यादा मानसिक और भावनात्मक जरूरतों को पूरा करती हैं। वे आपसे फिल्में, टी.वी., क्रिकेट, थियेटर, तरह-तरह के खानों और मदिराओं के स्वाद और बारीकियों पर गुफ्तगू करेंगी। 'अल्केमिस्ट' और 'माँक हू सोल्ड हिज फरारी' पर चर्चा कर सकती हैं। मुझे कई अनजान पाकिस्तानी गजल गायकों का उन्हीं से पता चला।

यानी इतना कुछ जो महानगरीय कोल्हू तले आप मिस करते हैं, किसी के साथ बाँटने के लिए तरसते हैं, वे उसी की भरपाई करती हैं। यहाँ तक कि जिन चीजों के लिए आप अपनी घर-गृहस्थी से प्रताड़ित होते रहते हैं, वही आपके पक्ष में रखी प्रतीत होती हैं। यू आर मेड टू फील लाइक ए स्टड व्हिच यू नेवर वर इन दैट सेक्रेड ऑल्टर कॉल्ड मैट्रीमॅनी। लाख हैसियत-हासिल के, महानगरीय जीवन में आपकी अस्मिता को इतना पोषित कोई मित्र-परिजन नहीं करता है। ठीक है कोई कह सकता है कि यह सब ईगो-मसाज का बाजार है। कीमत अदा होती है मगर मानस ईमानदारी से बताओ, हम लोग जो जीवन जी रहे होते हैं - तथाकथित निजी या रक्त के संबंधों से सुखी होनेवाला, वह लेन-देन के दायरे से मुक्त होता है? वहाँ हम उस तथाकथित प्यार और परवाह की कीमत नहीं चुका रहे होते हैं? क्या वे सब वाकई उतने निश्छल और स्वार्थहीन होते हैं जितने दिखते या दिखाए जाते हैं?'

गिलास के किनारे पर लगी नमक की परत को बचाते हुए मैं अगला घूँट लेने को रुका तो उसने बड़ी गंभीरता से कहा, 'मुझे नहीं पता था कि हमारे शहरों में पनपती जरूरतों

की इतनी व्यापक संस्कृति इतने चुपचाप ढंग से अपना काम करने में लगी है... तुम तो यार बड़े प्रतिभाशाली निकले जो इतना आगे निकल गए।'

उसके कहे में सरासर तंज था। होता रहे, मुझे इसकी परवाह नहीं थी।

'बिफोर यू गो द होल हॉग लेट मी क्लैरीफाई... यहाँ भी ढेर सारा छल-फरेब है, नुमाइश है। लेकिन यह देखो कि नई स्थितियों और चुनौतियों के बरक्स एक व्यवस्था कितनी बड़ी आपस की पूर्ति कर रही है और किस तरह से कर रही है। एक सभ्य विकसित समाज में इसके होने में आपराधिक क्या है? बल्कि यह न हो तो डिप्रेशन और आत्महत्याओं के कितने केस और बढ़ जाएँगे, सोचा है? रेसिंग के बेसिक्स जानने से पहले मुझे भी लगता था कि तुम किस वाहियातपने में अपना वक्त गँवाते हो लेकिन अब नहीं। और फिर अपनी तरह से कुछ भी करने की आजादी...।'

मैं आगे कुछ कहने जा रहा था कि उसने टोका, 'ग्लोबलाइजेशन हो रहा है। देश आगे बढ़ रहा है। उससे या किसी और वजह से लोगों के जीवन में खीझ, हताशा और उलझनें बढ़ रही हैं। वह सब तो ठीक है मगर दोस्त, एक बात बताओ... इतनी सारी 'माँग' की 'पूर्ति' कहाँ से होती है?'

मेरा मन किया कि अपने किसी प्रोफेसर की तर्ज पर अपने बचाव में पहले उससे कहूँ 'गुड क्वेश्चन' मगर उससे बात हल्की हो सकती थी।

'देखो, एक अचानक बन पड़े संयोग और अपनी निजी जिंदगी के बीहड़ के कारण मेरा इस समानांतर चलती दुनिया में थोड़ा दखल हो गया है। मेरे पास कोई आँकड़े नहीं हैं और उनसे मतलब भी क्या। जो देखा जाना है उसके आधार पर मोटे तौर पर ही कह सकता हूँ। सबसे पहले तो मनोरंजन उद्योग है। मुंबई में हर बरस कुछ नहीं तो तीन-चार हजार लड़कियाँ और पाँच-छह हजार लड़के मॉडलिंग, टी.वी. और फिल्मों में अपना भविष्य आजमाने आते हैं। ब्रेक कितनों को मिलता है? और जिन्हें मिल भी जाता है उनमें कितने आगे जा पाते हैं। ठीक है इधर एनिमेशन, डिजाइनिंग और हेल्थकेयर जैसे नए क्षेत्र उभरकर आए हैं। बीसियों टी.वी. चैनल खुल गए हैं मगर जितनी भीड़ है, उसके मुकाबले तो सब ऊँट के मुँह में जीरा ही है। कहाँ जाते हैं ये लोग? वापस तो शायद ही जाते हों। दूसरे, डिवोर्सीज और सिंगल्स-कंडैम्ड-टू-लिव हेयर फोर्म ए गुड चंक। मेरे अनुभव में इस लाइन में बड़ी तादाद शौकिया और कुछ हालात से बँधे लोगों की है... स्टुडेंट्स, पार्टटाइम नौकरी-पेशा, सेल्फ-एंपलॉइड और हाउस वाइव्स। किसी-न-किसी आड़ में सब अपने दायरों से छूट ले लेते हैं। यह शहर देता है। याद है

उस रोज जब मैं पहली बार तुम्हारे साथ रेसकोर्स गया था तो चौथी रेस के बाद ही चला आया था। वह एक एन.जी.ओ. से संबद्ध थी।'

हम दोनों ने अपने-अपने गिलास खाली किए और फिर भरवा लिए। बातें अपनी जगह और बाकी बातें अपनी जगह। गड्डमड्ड नहीं होनी चाहिए। मैं लौटा। 'कुछ उद्यमी किस्म के लोगों के लिए दिल्ली-मुंबई में 'जरूरतमंद' बड़े काम के हो गए हैं। नेटवर्किंग से ही मिलना हुआ था। यार क्या टेलेंटड सिंगर थी। शायद लता का है ना वो गाना 'बुझा दिए हैं खुद अपने हाथों मोहब्बतों के दीये जलाके' सुनाया था। हमारे शहरों में हर कोई पहचान के संकट से ग्रस्त है। बात हो गई थी तो मिलना ही था मगर मूड नहीं था। मैंने कहा चलो बैठते हैं। बातें करते हैं। इसी बात पर उसकी आँखों में आँसू आ गए। बोली, ऐसा भी कहीं होता है। मैंने समझाया कि होता न हो मगर हो तो सकता है। बस, उसने अपना सीना खोलकर रख दिया मेरे आगे... पूरी फिल्मी-सी कहानी। बचपन में एक सड़क हादसे में डॉक्टर पिता की मौत, माँ का धीरे-धीरे जमाया गया बीमा एजेंसी का काम, फिर एक विवाहित ग्राहक से अफेअर, नालायक भाई के आए दिन होते लफड़े, कॉलिज में फेल होने के बाद उसका एक स्ट्रगलर के साथ गोवा भाग जाना... शादी, मारपीट, आत्महत्या की कोशिश और फिर एन.जी.ओ. के जरिए रास्ते पर ढुलकती फिलहाल की जिंदगी। कभी चाहूँ तो वह दिल्ली भी आ जाए। दुनिया कितनी सिमट गई है।' मैंने देखा मानस ध्यान से सुन रहा था।

'एक और किस्सा ठाणेवाली का है। तेरह साल पहले जब वह मैटरनिटी लीव पर थी, उसके पति को ए.सी.बी. वालों ने पकड़ लिया। दोनों भवन-निर्माण विभाग में थे। सुख से (अब लगता है) जिंदगी बिताते मामूली मुलाजिम। कम होता है मगर अंततः उसके पति को बर्खास्त कर दिया गया। कोर्ट में केस चला। ए.सी.बी. वालों तक को खिलाया गया मगर सब बेकार। जमा-पूँजी के साथ उधार माँगा भी पानी में गया। पति एक मित्र के रेडीमेड के काम में हाथ बँटाने लगा। नुकसान के कारण वहाँ से भी भागना पड़ा। अच्छी बात यही कि बड़ा बेटा होनहार निकला है। आई.आई.टी. या एन.आई.आई.टी. में जा सकता है। मगर उसकी कोचिंग? मुंबई में कोचिंग बगैर कुछ हो सकता है क्या? इसलिए बीच-बीच में छुट्टी लेकर...पति ऐंठा-ऐंठा रहता है मगर घर कौन चला रहा है?...'

'बीच-बीच में कुछ अजीबोगरीब किस्से भी हो जाते हैं। कभी सामने से फोन आ जाता है। हर बार पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता। कभी किसी को नोकिया का सेट भा जाता है, किसी की हिल-स्टेशन घूमने की तमन्ना। दिल्ली-मुंबई में खूब आना-जाना रहता है। इसी चक्कर में दो-तीन क्रूज हो गए हैं...'

अंदर उछलते किस्सों में लंबी सैर के लालच से बचने के लिए मैं झटके से मुड़ा और बात खत्म करने के इरादे से बोला, '...तो कुल मिलाकर यही कि दोस्त तुम घोड़ों पर बाजियाँ लगाते हो और मैं घोड़ा बना रहता हूँ... जो है, ठीक है... जिंदगी से क्या शिकायत।'

हल्के सुरूर के चढ़ते मैं गौर नहीं कर पाया कि वह उस दृश्य से अपने को बाहर खींच चुका था। उसके बाद ज्यादा बातें नहीं हुईं, उन खाने-खजानों के बारे में भी नहीं जिनके बारे में चाव से बतलाने में उसे किसी परोपकारी-सा सुख मिलता था। शायद इसलिए कि वह थका हुआ था या उसके डेली के ग्यारह से ज्यादा बज गए थे। या कुछ और? कोई ऐसे भारी-भरकम होकर पसर जाए तो कैसे चले? मुझे कोंचना पड़ा : 'इसमें जलने या बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं है पार्टनर। तुम्हें भी दिखा देंगे यह दुनिया...'

वह सकते से मुस्कराया। पता नहीं किस बात से प्रेरित होकर 'प्यारे मियाँ' नाम के एक रैंक आउट-साइडर घोड़े का किस्सा बताने लगा जो अपने जीवन की पहली रेस-और वह भी डर्बी-इसलिए जीत गया था कि दर्शकों के शोर के कारण खौफ से, जान बचाने के लिहाज से बदहवास होकर भागने लगा था।

इसी क्रम में हमने अपना-अपना 'एवरेज' ठीक किया, थोड़ा खाना खाया और उठ लिए। सीढ़ियाँ उतरते ही उसने कान में कहा कि हमारे सामने वाली मेज पर जो चार लोग थे, समलैंगिक थे। मैं चौंका तो उसने कहा, 'यस, बोंबे इज द गे कैपिटल ऑफ इंडिया।'

नीचे गाड़ी के पास पहुँचते ही मैंने कहा, 'तुम्हारे लिए एक सरप्राइज है मानस।'

दोपहर बाद से ही इस खबर को ब्रेक करने की मेरे भीतर मक्खी भिनभिना रही थी।

'क्या?' उसने थोड़ा चौंककर देखा जरूर लेकिन जुंबिश ज्यादा नहीं थी।

'मुझे दिल्ली लौटना पड़ रहा है... यहाँ का काम...'

'कब?'

'कल सुबह नौ बजे की फ्लाइट है।'

सब कुछ टू द पॉइंट हो रहा था। मेरी फरमाइश पर हम कुछ देर यूँ ही ड्राइव करते रहे।

मध्यरात्रि के आसपास शहर के इस हिस्से की धजा कुछ और ही हो जाती है। अप्रतिम, अलौकिक और अविश्वसनीय ढंग से मोहक। दिन भर ट्रैफिक की धकापेल बर्दाश्त करने के बाद सुस्तायी और खुली-खुली जगमग सड़कों पर छन-छनकर आते-जाते वाहनों की मद्धम तरतीबी... पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित तमाम गोथिक इमारतों को सलीके से खास बिंदुओं पर प्रदीप्त करती पीली रोशनियाँ टूट-टूटकर उनकी आदिम आभा और वैभव को उड़ेलती रहती हैं... सभ्यता का कोई वास्तविक स्वप्नलोक। इस वक्त आपने यह नजारा नहीं देखा तो समझो बहुत कुछ नहीं देखा। छूटती हुई चीजों की कसक वैसे भी और भी तीखी हो जाती है। थैंक्स मानस।

कंबाला हिल अपने ठिकाने पर पहुँचने पर जैसे ही मैं उतरा, उसने ताना मारा 'बट दिस इज अनफेअर'। मैं खुश हुआ, चलो इस मुर्दे में जान तो आई। 'सॉरी यार, मुझे भी दोपहर को फरमान मिला... तब बता देता तो शाम का मजा चला जाता... इसलिए...' दोस्ती में भी कितनी तरह के अहसास और गणनाओं के रंग धँसे रहते हैं।

खैर, वह ऊपर आ गया। हम लोग देर तक बतियाते रहे। कॉलिज के दिनों की, मुंबई की, घोड़ों और एस्कॉर्ट्स सर्विसिस की छूटी हुई बातें। मुझे अच्छा लगा कि अब वह बड़े सामान्य और दिलचस्प ढंग से सबका आनंद ले रहा था। इससे मेरी हिम्मत बढ़ गई।

'मानस, उस रोज जैकपॉट वाली बात पर तुमने डपट दिया था इसलिए दोबारा हिम्मत नहीं हुई मगर तुमसे एक सवाल पूछना चाह रहा था...'

उसने कुछ आशंकित निगाहों से मुझे देखा। शायद कुछ परखा और संतुष्ट-सा लगने पर बोला, 'ओके... पूछो, पूछ डालो'

'तुम रेसिंग में इतना आगे निकल गए हो, इतना कुछ स्टडी करते हो मगर यह बताओ तुमने अभी तक इसमें कितना कमाया है?'

पल भर में उसकी आँखें मुँद गईं। सीधे हाथ का अँगूठा और तर्जनी कोरों को दबाने चले गए... जैसे किसी कोशिश को काबू कर रहे हों।

कुछ देर यूँ ही सन्नाटा छाया रहा।

आधा मिनट से ऊपर हो गया तो मुझे कुछ असामान्य-सा लगा। मैंने जैसे ही हौले से छूते हुए उसका नाम फुसफुसाया, वह फफक पड़ा, '...मैंने लाइफ में कुछ नहीं कमाया

समीर... सब गँवाया है। मैं तो घोड़ा रह गया... मेरी वाइफ जॉकी बन गई... यू नो, माई वाइफ इज एन एस्कॉर्ट... माई वाइफ इज एन एस्कॉर्ट...'

दिल्ली वापस आने के बाद जब भी मैंने उसे मोबाइल किया, बार-बार यही संदेश आया है : कृपया डायल किया नंबर जाँच लें।